ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 373-378
www.allresearchjournal.com
Received: 15-11-2014
Accepted: 21-12-2014

डॉ. कविता राजन
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. कविता राजन
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

दलित स्त्री का सवाल और दलित अस्मिता

डॉ. कविता राजन

प्रस्तावना

दलित अस्मिता का पैदा होना ऐतिहासिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का परिणाम है। समाज में पवित्र और उत्कृष्ट समझी जाने वाली प्रचलित मिथकीय संरचनाओं पर कड़ा प्रहार करता हुआ यह आन्दोलन वास्तविक अर्थों में विवेकशील परंपराओं का समर्थन करता है। महान समझी जाने वाली उच्च एवं वर्णव्यवस्था केंद्रित परम्पराओं पर प्रहार करती हुई उनकी विवेकशीलता पर सवाल करती है। ज्ञान के परंपरागत मिथकीय स्थापनाओं को खारिज करती हुई कड़ा प्रतिरोध दर्ज करती है।

हाल के दशकों में हाशिए पर मौजूद यह समाज स्वयं अपना वजूद ले कर उठ खड़ा हुआ है और बार-बार उस तथाकथित मुख्यधारा की संरचनाओं का विरोध कर रहा है। वह अब सवाल पूछ रहा है कि क्यों उसे अब तक अनदेखा किया गया? कहीं न कहीं ये लोग अब उन रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध और उस गुलामी से मुक्ति की बातें कर रहे है, जिसे जन्म के कारण इन्हें ढोना पड़ता था।

प्रो॰ गोपाल गुरु ने कहा है कि "'दलित' शब्द 'दलित पहचान' को बताता है कि वो हैं कौन? यह शब्द सामाजिक बदलाव और क्रान्ति की भावना के लिए संघर्ष का सन्देश देता है।"[1] ईश कुमार गंगानिया ने लिखा है कि- "दलित, जो अधिक दबाए गए तथा असीमित धिक्कारे, प्रताड़ित किए गए हैं, जिनके साथ अमानवीय कृत्य किए गए हैं, जिनका निरन्तर शोषण किया गया है ये वर्ग ही दलित हैं।"[2]

भारत में सामाजिक समानता के लिए जो आन्दोलन हुए, वे एक स्तर पर भले ही धार्मिक रहे हैं। लेकिन दूसरे स्तर पर वे पाखण्ड, जांत-पांत व कर्मकाण्डों के विरूद्ध रहे। इस सम्बन्ध में प्रवेश कुमार की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "आधुनिक युग में सामाजिक आन्दोलन का स्वरूप भले ही धार्मिक रहा हो किन्तु इसकी प्रकृति लोकतान्त्रिक व उदारवादी थी। इसने लिंग व जाति पर आधारित असमानता के विरूद्ध स्वतंत्रता व समानता का समर्थन किया। इसके मध्य से समाज में पिछड़े वर्गों विशेष रूप से महिलाओं और अछूतों की मुक्ति के लिए ठोस पहल आरम्भ हुई। तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे आन्दोलन आगे बढ़ता गया, इसके धार्मिक व सामाजिक पहलू कमजोर पड़ते गए और लौकिक व राजनैतिक पक्ष मजबूत होता गया।"[3]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर महात्मा गांधी के हाथों में आ गई। महात्मा गांधी के लिए स्वाधीनता प्राथमिक, धार्मिक व सामाजिक कुरीतियाँ गौण। इस बारे में प्रवेश कुमार ने लिखा है कि- "महात्मा गांधी का लक्ष्य था सर्वोदय समाज की स्थापना। सर्वोदय समाज से महात्मा गांधी का तात्पर्य एक ऐसे समाज से था जिसमें सभी उन्नत हों, सभी सुखी हों, सभी के साथ न्याय हो। सामाजिक प्रगति में सब समान रूप से भागीदार बनें और सभी को सामाजिक प्रगति में समान रूप से हिस्सा मिले।..... महात्मा गांधी यह जानते थे कि सर्वोदय समाज की उनकी परिकल्पना तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक कि समाज में निर्धन व कमजोर वर्ग विशेष रूप से महिलाएँ और अछूत 'समुन्नत' नहीं होते। इसलिए उन्होंने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के साथ महिलोत्थान तथा हरिजनोद्धार के कार्यक्रमों को अपने हाथ में लिया और राष्ट्रीय आजादी के साथ-साथ समतामूलक समाज बनाने के लिए तमाम सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने हेतु सामाजिक सुधार कार्यक्रमों का संचालन किया।"[4]

महात्मा गांधी के लिए स्वाधीनता प्रमुख थी, जिसके परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अछूतोद्धार और स्त्रियों की मुक्ति के लिए अपने कार्यक्रम चलाए। महात्मा गांधी के प्रमुख कार्यक्रम में 'अछूतोद्धार' था, क्योंकि भारत की लगभग 15 प्रतिशत जनसंख्या उस समय छूआछूत की शिकार थी, जिसके कारण आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। इसके लिए आर्थिक पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण शिक्षा का न होना भी था। चूँकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने शूद्रों को अछूत घोषित कर उन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा। उनके साथ दासों से भी बुरा बर्ताव किया, चूँकि दासों को अछूत नहीं माना गया लेकिन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में इन्हें अछूत भी माना गया। इसलिए महात्मा गांधी ने अछूतों के उद्धार के लिए अपने कार्यक्रम चलाए। गेल ओमवेट के अनुसार, "महात्मा गांधी का कहना था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर अभिशाप है। उनकी मान्यता थी कि यदि अस्पृश्यता रहती है तो हिन्दू धर्म मिट जाएगा और यदि हिन्दू धर्म को जीवित रखना है तो अस्पृश्यता को मिटाना ही होगा। उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा कि अस्पृश्यता रहे इससे अच्छा है कि हिन्दू धर्म मिट जाए।"[5]

महात्मा गांधी ने अछूतों के उद्धार के लिए 'हरिजन' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने लोगों को अस्पृश्यता के विरूद्ध जागृत किया। "अस्पृश्यता विरोधी लीग" का नाम आगे चलकर 'सर्वेन्ट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसाइटी' रखा गया जो अन्ततः 'हरिजन सेवक संघ' के नाम से विख्यात हुआ।"[6] गांधी ने हरिजनों के मन्दिर में प्रवेश आन्दोलन का समर्थन किया तथा रंगा अय्यर अस्पृश्यता निवारण बिल के कियान्वयन की सिफारिश की। कुल मिलाकर गांधी का रवैया दलित समस्याओं के प्रति सुधारवादी रहा। महात्मा गांधी अछूतों की समस्या को हिन्दू धर्म के अन्दर ही हल करना चाहते थे यह उनकी एक सीमा भी है।

अस्पृश्यता की परम्परा, दासता, मूलभूत अधिकारों से वंचित रखने की धर्माधिष्ठित रूढ़ियों का विरोध करके दलितों को एक मनुष्य होने के नाते उनके मूलभूत अधिकारों को दिलाना तथा उसमें उसके अस्तित्व अर्थात् उसके होने को लेकर उसके मन में चेतना जगाना ही दलित अस्मिता आन्दोलन का लक्ष्य है।

स्त्री समाज की मूलभूत इकाई है। पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री विशेषकर दलित स्त्री, जाति व पितृसत्ता रूपी दोहरे अभिशापों के तीखे दंशों को झेलने के लिए अभिशप्त है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री होने के साथ दलित होना स्त्री के संतापों को कई गुना बढ़ा देता है। भारतीय समाज जाति व धर्म पर आधारित है। पितृसत्तात्मक भी है। पितृसत्ता ने सारे नियम अपनी सुविधा के अनुसार बनाये हैं। दलित स्त्रियां जाति और पितृसत्ता दोनों का उत्पीड़न झेलती हैं। घर के बाहर गैर दलित उन्हें लहूलुहान करते हैं तो घर के अन्दर दलित पुरुषों की वर्चस्ववादी मनोवृत्ति व शारीरिक हिंसा उन्हें तोड़ती है।

दलित समाज की महिलाओं की स्थिति सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा अधिक दयनीय, सोचनीय, नारकीय एवं पाशविक है। आज उनकी यह स्थिति समाजशास्त्रियों, स्वयंसेवी संस्थाओं, समाजसेवियों, बुद्धिजीवियों, शिक्षाशास्त्रियों, राजनीतिक नेताओं एवं सरकार के लिए एक बहुत बड़ी चुनौतीपूर्ण समस्या है। यह स्थिति इसलिए और भी गंभीर प्रतीत होती है कि भारतीय समाज का यह महत्वपूर्ण वर्ग आज भारत की स्वतंत्रता की अर्द्धशताब्दी से अधिक व्यतीत होने पर भी दलितों का दलित बना हुआ है।

आज दलित समाज से दलित महिलाओं को अलग करके देखने की आवश्यकता है और इस पर लम्बी बहस की आवश्यकता है। आज का दलित समाज मनुवादियों के षड्यंत्रों के कारण हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। किंतु दलित समाज की महिलाएं उससे भी अधिक पिछड़ी हुई हैं। इस कटु सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता उन्हें मनुवादियों के षड्यन्त्रों और कुटिल चालों के अतिरिक्त अपने समाज और परिवार के उत्पीड़न का भी अनवरत शिकार होना पड़ता

है। इस मायने में दलित महिलाएं दोहरी दलित हैं। इसमें दो राय नहीं है कि हमारे समाज में औरत और उसमें भी दलित औरत की स्थिति काफी दयनीय है। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि दलित औरत हर क्षेत्र में आजादी के बाद भी पिछड़ी है, उसकी स्थिति बद से बदतर है और उसके अधिकारों की बात तो बार-बार की जाती है, लेकिन असलियत में अधिकारों के नाम पर उसे छला ही गया है। दलित महिलाओं की इस नारकीय एवं पाशविक स्थिति का सबसे बड़ा एक मात्र कारण हिन्दू धर्म में अंधविश्वास एवं प्रज्ञाहीन मान्यताओं का होना है। आज विश्व में जब किसी देश में मानवाधिकारों का हनन होता है, तब भारत के मनुवादी नेता, शिक्षाशास्त्री एवं बुद्धिजीवी गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते है, लेकिन जब उनकी नाक के नीचे और उनके पड़ोस में दलित महिलाओं को नंगा करके घुमाया जाता है, खुले मैदान में बलात्कार और हत्याएं की जाती हैं उनके स्तन काट दिए जाते हैं, उन्हे जला दिया जाता है और अनेक प्रकार के शोषण, उत्पीड़न और अन्याय किए जाते हैं, उस समय किसी भी तथाकथित बुद्धिजीवी के कान पर जूं तक नहीं रेंगती और वे चुपचाप बैठकर सब कुछ सुनते और देखते रहते हैं।

आज भी देश में दलित महिलाओं के साथ अत्याचारों का घिनौना सिलसिला थमा नहीं है, वह बेरोकटोक जारी है। आज हालात यह है कि छोटे-मोटे अपराधों तक की सजा उसको सरेआम नंगा कर व बलात्कार करके दी जाती है और विडंबना यह है कि पीड़िता को न्याय देने की अपेक्षा मुखिया, पुलिस और प्रशासन ताकतवर तबके का ही पक्ष लेता है और अपराधी को बेखौफ घूमने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस तरह दलित स्त्री का शोषण होता रहता है। दलित स्त्री के शोषण के मुख्य कारण हैं- नये क्षेत्रों में आने पर पाबंदी, अशिक्षा, निर्धनता, रूढ़िवादिता, रोजगार के अवसरों की अनुपलब्धता तथा बालिकाओं से नौकरी एवं रोजगार कराने को अनुचित समझना इत्यादि। इसका परिणाम यह है कि अंत में उन्हें पुरुषों पर निर्भर रहकर ही अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है, अतः कहना न होगा कि आत्मनिर्भरता और शिक्षा का सवाल ही दलित स्त्री का भी प्रमुख सवाल है। लेकिन समय व परिस्थिति के साथ इन लोगों में भी अब परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है। नारी केवल परिवार में ही नहीं, वरन् प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। आज वह पुरुषों के समकक्ष ही शिक्षित है, जिसमें अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूकता आने लगी है। विद्यालय, शोध-संस्थान, कार्यालय, व्यापार, रेडियो, दूरदर्शन आदि सभी क्षेत्रों में कार्यरत हैं, किन्तु ऐसी महिलाएं बहुत कम हैं, जो बड़े पदों पर आसीन हैं। पिछड़े, अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं अर्थात् दलित महिलाओं की स्थिति इससे भिन्न है। उनकी स्थिति आज भी सभी क्षेत्रों में दयनीय ही है। जहां तक नौकरी का सवाल है, अधिकांशतः वे छोटे पदों पर या चतुर्थ श्रेणी वर्ग में ही अधिकतर कार्यरत हैं। अनुसूचित जाति की बहुत सी नारियां अशिक्षित अथवा अल्प-शिक्षित होने पर विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग लगाकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधारते हुए परिवार को प्रतिष्ठित कर रही हैं लेकिन ऐसी महिलाओं की संख्या बहुत कम है या यों कहिए उन्हें उंगलियों पर गिना जा सकता है। इन सब के बावजूद दलित स्त्री को वह सम्मान नहीं प्राप्त है जिसकी वह हकदार है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री की दशा में सुधार के लिए अनेक कानून बनें हैं जैसे संपत्ति का अधिकार, छुआछूत विरोधी कानून, घरेलू हिंसा विरोधी कानून, दहेज विरोधी कानून, शिक्षा का अधिकार इत्यादि पर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं कुव्यवस्था के कारण समाज के दलित व निम्न तबकों को बहुत कम प्रतिशत में इनका लाभ मिल पाया है। दलित महिलाएं बहुत कम अंशों में शिक्षित हो पाती है व अशिक्षित रह जाने के कारण न तो वह अपनी नारकीय स्थिति को ही समझ पाती हैं न अपने शोषकों को पहचान कर अपनी स्थिति में सुधार के लिए कुछ कर पाती हैं। केवल विपत्ति या भाग्य मान कर सिसक-सिसक कर रोते हुए अपना जीवन बिता देती हैं। इतना ही नहीं, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अन्य सभी अवसरों में सामाजिक विभेद उनके विवेक और चेतना को पंगु कर देते हैं। यदि कारण-कार्य नियमानुसार महिलाओं की इस स्थिति का कारण खोजा जाए, तो ज्ञात होता है कि इसका मुख्य कारण मनुवादी व्यवस्था है, जिसने महिला समाज की समानता और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया था। इस संदर्भ में मनु का कथन विशेष तौर पर उल्लेखनीय है, वह कहता है- "पुरुषों को चाहिए कि वे अपने अधीनस्थ स्त्रियों को कभी स्वतंत्र न रहने दें। वे विदित विषयों में लगी हुई भी अपने वश में रहें, ऐसा यत्न करें। कुमारी अवस्था में पिता उसकी रखवाली करता है, युवावस्था में पति बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। स्त्री का सर्वथा स्वतंत्र रहना योग्य नहीं।"[7]

आज दलित समाज की स्त्रियां यथार्थ में दलितों की दलित हैं। मनु का कथन दलित वर्ग की महिलाओं पर आज भी शत प्रतिशत और निरपेक्ष रूप से खरा उतरता है। जैसाकि हम जानते हैं दलितों की आर्थिक स्थिति दयनीय एवं शोचनीय होने के कारण उनका सामाजिक स्तर अत्यंत निम्नकोटि का होता है ये लोग झुग्गी-झोपड़ियों, पुनर्वास कालोनियों, गंदी बस्तियों और देहातों में नारकीय एवं पाशविक जीवन व्यतीत करते हैं निरक्षरता, अशिक्षा, गरीबी और पिछड़ेपन के कारण इस वर्ग की महिलाएं स्वस्थ जीवन की समस्त सुविधाओं से वंचित रहती हैं। इनके लिए संतुलित भोजन का अभाव सदैव रहता है, दलित महिलाएं पढ़ाई-लिखाई और समुचित वातावरण के अभाव में 'परिवार-नियोजन' के महत्व को नहीं समझ पातीं और अधिक बच्चे पैदा करने के कारण, परिणाम यह होता है कि वे अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाती हैं और समय से पहले ही मर जाती है। यदि दलित महिलाओं के जीवन को देखा जाय तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उनका जीवन शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार अन्याय और अभावों से परिपूर्ण है। यथार्थ में दलित महिलाओं के जीवन से पशुओं का जीवन कहीं अधिकर बेहतर है।

दलित समाज सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ा होता है। परिवार में किसी प्रकार का संकट, परेशानी दिक्कत आने पर अंत में समस्या का समाधान लात-घूसों और डंडों से पिटाई करके किया जाता है। निरक्षरता, अशिक्षा और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ेपन के कारण दलित महिलाएं अंधविश्वास और पाखंड़ों से भी पूरी तरह जकड़ी हुई हैं। इनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पूर्णरूपेण अभाव है, जिसके कारण इनमें अनेक प्रकार की कुरीतियाँ एवं पाखण्ड भरे हुए हैं, जो यथार्थ में दुखों के सबसे बड़े कारण हैं। अक्सर देखा गया है कि कोई दलित महिला गोबर पूजने को धर्म समझती है तो कोई गाय पूजती है, कोई भैंस तो कोई गधे को, कोई घास को पूजती है इस प्रकार वह अनुपयोगी और निरर्थक तथा साध्यहीन की पूजा में संलग्न रहती है। निरक्षरता और अशिक्षा जैसे महान दुर्गुण के कारण आज भी दलित महिलाएं पर्दा और सती-प्रथा को आदर्श समझती हैं। इस स्थिति को समाप्त करना अत्यंत आवश्यक है।

कहना न होगा कि बाबा साहेब के लेखन, भाषण और चेतना प्रसारण से दलित समाज में जन-जागृति आई है लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि संपूर्ण दलित समाज जागृत हो गया है, चैतन्य हो गया है। स्थिति यह है कि अभी और अधिक चेतना प्रसार की जरूरत है, विशेषकर स्त्रियों के संदर्भ में यह आवश्यक है कि दलित समाज मनुवादी मानसिकता छोड़ें, वे दलित महिलाओं को समानता का दर्जा दें, समान स्वतंत्रता दें और बराबर कर साथी मानकर जीवन के हर क्षेत्र में साथ-साथ आगे बढ़ें।

दुख इस बात का है कि दलित समाज में आज भी यह भावना पूरी तरह नहीं जग पाई है। उनके किसी काम को, किसी भावना को महत्व नहीं दिया जाता। दलित महिलाओं के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है कि समाज में महिलाओं के प्रति मानसिकता को कैसे बदला जाए। क्योंकि समाज की इस मानसिकता के कारण सम्पूर्ण दलित महिलाएं नारी मुक्ति आंदोलनों से जुड़ नहीं पाती हैं। आज भी वे अपने घर की अनुमति के बिना नारी विकास संबंधी कार्यक्रमों में भी नहीं जा पाती हैं और न ही सामाजिक कार्यकर्त्ता महिलाओं के विचारों का लाभ ही ले पाती हैं। अतः यह बहुत जरूरी है कि नारी के प्रति पुरुषों की और संपूर्ण समाज की मानसिकता बदली जाए, तभी दलित महिलाओं के प्रश्नों और समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

दलित स्त्रियों के पारिवारिक प्रश्न भी अनेक हैं। पुरुष प्रधान समाज में परिवार का मुखिया पुरुष होता है लेकिन परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी स्त्रियों पर हो होती है। अपने और सामाजिक विकास के लिए वे घर से बाहर कैसे जा सकती हैं क्योंकि घर की, बच्चों की, सास-ससुर सबकी जिम्मेदारी वे ही उठाती हैं। घर का खाना कौन बनाएगा, घर के सब काम कौन करेगा, पारिवारिक व्यवस्था को कौन देखेगा- इन प्रश्नों के साथ घर की स्त्रियों को पूरी तरह बंधनों में जकड़ दिया जाता है। बरसों से इस छोटे घेरे में बंधी नारी स्वयं भी यह सोच नहीं पाती है कि कभी वह इन जिम्मेदारियों के अतिरिक्त और भी कुछ कर सकती है। घर परिवार के प्रति अपने कर्तव्य पूरे करते हुए, जिम्मेदारियाँ उठाते हुए और सबकी सेवा करते हुए वह इतनी थक जाती है कि वह फिर कुछ करने की स्थिति में नहीं रहती। अतः दलित आन्दोलन से जुड़ी महिलाओं के सामने यह प्रश्न है कि स्त्रियों को परिवार की जिम्मेदारी के सीमित घेरे से बाहर कैसे निकाला जाय। उनके परिवार के पुरुषों को यह कैसे बताया जाए कि परिवार की जिम्मेदारी स्त्री और पुरुष दोनों की है।

दलित महिलाओं और दलित आन्दोलन से जुड़ी महिलाओं के समक्ष आर्थिक प्रश्न सबसे बड़ा है। ये महिलाएं परिवार के पुरुषों पर निर्भर रहती हैं। कदम-कदम पर उन्हें पुरुषों का मुंह देखना पड़ता है। उनकी प्रत्येक आज्ञा माननी

पड़ती है। वे स्वतंत्र होकर कोई काम नहीं कर पाती है और घुट-घुट कर जीती रहती हैं। यदि ये स्त्रियां नौकरी करती हैं तब इनके द्वारा अर्जित धन पर पति का पूरा अधिकार रहता है। इनके धन का लाभ केवल परिवार को ही मिलना चाहिए, ऐसी मान्यता रहती है। सबकी इच्छाएं, सुविधाएं और जरूरतों को पूरा करते-करते उसके पास अपने स्वयं के लिए कुछ भी नहीं बच पाता है। समाज में जिस तरह स्त्रियों पर पुरुषों का अधिकार समझा जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों के अर्जित धन पर पुरुषों का अधिकार माना जाता है। स्त्री अपने रुपयों का उपयोग पुरुष की अनुमति के बिना अपनी मर्जी से नहीं कर सकती, यह एक सामाजिक धारणा बनी हुई है। वह पति को खुश रखे, अपने परिवार को खुश रखे और इन सब की खुशी के लिए स्वयं न्योछावर होती रहे, तभी वह अच्छी पत्नी, अच्छी मां और अच्छी बहू-बेटी कहला सकती है।

अतः हमारे सामने यह प्रश्न है कि प्रथम तो बेरोजगार महिलाओं को कैसे स्वावलम्बी बनाएं- आर्थिक दृष्टि से उन्हें कैसे सबल बनाएं। दूसरे नौकरी पेशा महिलाओं की निर्बल मानसिकता को कैसे सबल बनाया जाए कि वे अपनी धनराशि का उपयोग अपनी दृष्टि से उचित रूप में कर सकें। जब तक उनकी मानसिकता कमजोर रहेगी, तब तक वे पुरुषों के अधीन ही रहेंगी और उनके आदेशों का पालन चुपचाप करती रहेंगी। वे अपने प्रति अन्याय को भी समझ नहीं सकेंगी और न ही कभी उनके प्रतिकार के विषय में सोच सकेंगी।

यहाँ सबसे बड़ा प्रश्न है- मानसिकता को बदलने का विवेक, बुद्धि और तर्कज्ञान के द्वारा अपनी दृष्टि से देखने समझने और निर्णय लेने की क्षमता पैदा करने का। जब तक इन प्रश्नों को हल नहीं किया जाएगा। तब तक दलित महिलाओं के समक्ष अनेक समस्याएं आती रहेंगी।

इसके साथ ही स्वयं के प्रति आस्था और मानवीय मूल्यों में दृढ़ विश्वास से ही महिला सशक्तिकरण सम्भव है। सशक्तिकरण में केंद्रीय विचार 'शक्ति' का है और शक्ति जैसा कि कार्ल मार्क्स ने कहा था- "संसाधनों (भौतिक, उत्पादक व मानवीय) पर अधिकार और नियंत्रण से प्राप्त होती है। इन पर जो समूह नियंत्रण स्थापित कर लेता है। महिला सशक्ति के संबंध में इसी सूची में बौद्धिक संसाधनों, ज्ञान सूचना और नए विचारों पर नया सोच सकने की क्षमता को भी जोड़ना पड़ेगा।"[8]

महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें न केवल संसाधनों पर उनको अधिकार दिलाने होंगे, वरन् इस विचारधारा को भी बदलना होगा, जो भेदभाव के विचारों, दृष्टिकोण और विश्वास के जरिए लिंग-भेद को बनाए रखते हैं। इस विचारधारा वाले बिंदु को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। क्योंकि इसमें परिवर्तन न होने के कारण ही सरकार की अनेक सशक्तिकरण योजनाएं निष्प्रभावी सिद्ध हुई हैं।

अतः सशक्तिकरण का प्रारंभ उस वैचारिक परिवर्तन पर आघात करके किया जाना चाहिए जो कि भेदभाव को आगे बढ़ाते हैं। इसके लिए महिला-पुरुष की समानता के विचारों को समाज में प्रसारित किया जाना चाहिए। महिलाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य हो और शिक्षा के पाठ्यक्रमों में असमानता के मूल्यभारित अंशों को हटाया जाना भी आवश्यक है। दूसरे महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाकर सशक्त किया जाए। विभिन्न सेवाओं एवं क्षेत्रों में आरक्षण और दूसरी सुविधाएं देकर उन्हें आगे लाने के प्रयासों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए लागू की गई विभिन्न योजनाओं की समीक्षा कर बेहतर क्रियान्वयन की व्यवस्था की जाए महिलाओं की स्थिति को सुधारने-संवारने के लिए अनेक संशोधन एवं उनके कानून बनाए गए लेकिन इसके ठीक से क्रियान्वयन नहीं होने से वे अप्रभावी हैं। अतएव उनमें संशोधन एवं उनके क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी एजेंसियों विशेषकर पुलिस और प्रशासन के साथ ही साथ न्यायपालिका को अधिक संवेदनशील बनाया जाना मौजूदा समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दलित महिलाओं को नारकीय एवं पाशविक स्थिति से उबारने के लिए दलित समाज के प्रबुद्ध समाज-सेवियों, शिक्षाविदों और कार्यकर्त्ताओं को आगे आना पड़ेगा। इन लोगों का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए कि वे उन्हें प्रेरित करें कि दलित महिलाएं अपने बच्चों को विद्यालय भेजें और परिवार नियोजन पर विशेष ध्यान दें। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्यक संकल्प लेकर अपने एवं परिवार के जीवन से अंधविश्वास और पाखंड़ों को समाप्त करने में, अपने संपूर्ण जीवन को समर्पित कर दें और अपना संपूर्ण जीवन अपने परिवार, समाज और राष्ट्र निर्माण में लगाएं। इसकी सबसे बड़ी पद्धति बुद्ध के मार्ग का अनुशीलन करना है। इस प्रक्रिया में दलित समाज के प्रबुद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे इस सांस्कृतिक प्रक्रिया में दलित महिलाओं के मार्ग को आगे साफ करते हुए चलें, जिससे उन्हें आगे बढ़ने में किसी प्रकार का व्यवधान न आए। जो लोग इस कार्य में अवरोध एवं व्यवधान उत्पन्न करने का प्रयास करें, उनके सभी प्रयासों को मीडिया, विचार गोष्ठियों, सेमीनारों, सस्ते साहित्य के माध्यम और प्रबुद्ध लोगों की सहायता से

उजागर करके निंदा की जाए। उसी स्थिति में दलितों की, दलित महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और सम्मान जनक स्थान देकर इंसानों की श्रेणी में रखा जा सकता है, अन्यथा नहीं। यथार्थ में यह दलित महिलाओं की बहुत बड़ी सेवा होगी।

संदर्भ

1. पृ. 34, घनश्याम शाह: 'दलित आईडैंटिटी एण्ड पॉलिटिक्स'
2. पृ. 21, ईश गंगानिया: 'कलचरल नेशनलिज़्म ह्यूमनलिज़्म एण्ड डॉ. अम्बेडकर मेन्सइस्ट्रिम , अप्रैल 14-20
3. पृ. 55, प्रवेश कुमार: 'दलित अस्मिता की राजनीति'
4. पृ. 16, वही
5. पृ. 45, गेल ओमवेट: 'अम्बेडकर टूआर्डस एण्ड् इन्लाइटमैन इण्डिया'
6. पृ. 49-51, गेल मोवेट: 'दलित विज़िन ट्रैक्स फॉर दि टाइम्स'
7. पृ. 130, सकंलन- डॉ. मंजू सुमन, संपादन- ज्ञानेन्द्र रावत: 'दलित महिलाएँ'
8. पृ. 100, पर उद्धृत, वही